OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

सिल्वर स्क्रीन की शिल्पकारः वे स्त्रियां जो दिखाई नही देती

डॉ. मो. आरिफ अंसारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
arif.mcj@gmail.com

सारांश

पितृसत्तात्मक चुनौतियों के बावजूद, फातिमा बेगम (भारत की पहली महिला निर्देशक, 1926) से लेकर समकालीन फिल्म निर्माताओं जैसे जोया अख्तर, मेघना गुलजार और पायल कपाड़िया तक, महिलाओं ने फिल्म निर्माण के हर रचनात्मक और तकनीकी क्षेत्र, निर्देशन, पटकथा लेखन, संपादन, छायांकन और निर्माण में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। लेख में मीरा नायर और दीपा मेहता के वैश्विक सिनेमा, हनी ईरानी और जूही चतुर्वेदी की यथार्थवादी पटकथाओं, आरती बजाज के संपादन कौशल, बी.आर. विजयलक्ष्मी और अंजुली शुक्ला के छायांकन में pioneering कार्य, तथा ऑस्कर विजेता भानु अथैया के कॉस्ट्यूम डिजाइन पर प्रकाश डाला गया है। यह अध्ययन स्थापित करता है कि इन महिलाओं ने सिनेमा को केवल मनोरंजन के माध्यम से आगे बढ़ाकर सामाजिक बदलाव का सशक्त उपकरण बना दिया है, जहाँ महिला पात्र अपनी कहानी की रचयिता हैं। निष्कर्ष यह है कि भारतीय फिल्म जगत में यह 'मूक क्रांति' महिलाओं के नेतृत्व को सर्वोपरि स्थान देती है, जिसके बिना भविष्य का सिनेमा अधूरा है।

मुख्य शब्द

भारतीय सिनेमा, महिला फिल्मकार, अदृश्य शिल्पकार, फिल्म निर्देशन, पटकथा लेखन, फातिमा बेगम, भानु अथैया, सिनेमा और सामाजिक बदलाव।

OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

सिनेमा की चमकदार दुनिया में, जहां हीरो, हीरोइनें स्क्रीन पर चमकते हैं और दर्शक उनकी कहानियों में खो जाते हैं, वहां एक छिपी हुई ताकत काम करती है, वे स्त्रियां जो पर्दे के पीछे से पूरी फिल्म को आकार देती हैं। ये शिल्पकार निर्देशक, लेखक, संपादक, सिनेमेटोग्राफर, प्रोड्यूसर, कॉस्ट्यूम डिजाइनर और अन्य भूमिकाओं में अपनी रचनात्मकता से फिल्मों को जीवंत बनाती हैं, लेकिन अक्सर उनका नाम क्रेडिट्स की अंतिम लाइनों में खो जाता है। भारतीय सिनेमा का इतिहास इन महिलाओं की कहानियों से भरा पड़ा है, वे जो पितृसत्तात्मक समाज में चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी जगह बनाती रहीं। फात्मा बेगम से लेकर आज की पायल कपाड़िया तक, ये औरतें न केवल फिल्में बनाती हैं, बल्कि समाज की सोच को बदलने का माध्यम भी बनती हैं। ये कहानियां बताती हैं कि सिनेमा सिर्फ मनोरंजन नहीं, बल्कि एक क्रांति है, और इसमें इन अदृश्य शिल्पकारों का योगदान अमिट है।

सबसे पहले बात करते हैं उन महिलाओं की जो कैमरे के पीछे से पूरी फिल्म की दिशा तय करती हैं, यानि निर्देशक। भारतीय सिनेमा में महिलाओं का निर्देशन का सफर 1926 से शुरू होता है, जब फातिमा बेगम ने 'बुलबुल-ए-परिस्तान' बनाई जिसमें उन्होंने विशेष प्रभावों (स्पेशल इफेक्ट्स) के लिए ट्रिक फोटोग्राफी का उपयोग किया। वह न केवल भारत की पहली महिला निर्देशक थीं, बल्कि अभिनेत्री, लेखक और प्रोड्यूसर भी थीं। उस दौर में, जब महिलाओं का फिल्मों में काम करना सामाजिक रूप से अस्वीकार्य था, फातिमा ने अपनी प्रोडक्शन कंपनी 'फातिमा फिल्म्स' शुरू की और 'चंद्रावली' (1928), 'हीर रांझा' (1928), 'भाग्य की देवी' (1929), 'मिलान दिनार' (1929), 'कनक तारा' (1929) जैसी फिल्में बनाईं। उनकी बेटियां जद्दनबाई और सुल्ताना भी सिनेमा में आईं, और जद्दनबाई तो नरगिस की मां बनीं। फातिमा की कहानी एक प्रेरणा है, वह बताती हैं कि कैसे महिलाएं अपनी शर्तों पर सिनेमा को आकार दे सकती हैं।

आज के दौर में, मीरा नायर जैसी निर्देशक वैश्विक स्तर पर भारतीय कहानियों को ले गई हैं। मीरा का जन्म भारत में हुआ, लेकिन उन्होंने न्यूयॉर्क में पढ़ाई की और 'सलाम बॉम्बे' (1988) से डेब्यू किया। यह फिल्म स्ट्रीट चिल्ड्रन की जिंदगी पर थी, जो ऑस्कर के लिए नामांकित हुई। मीरा की 'मॉनसून वेडिंग' (2001) ने वेनिस फिल्म फेस्टिवल में गोल्डन लायन जीता, जहां उन्होंने भारतीय परिवार की जटिलताओं को हास्य और गहराई से दिखाया। उनकी 'द नेमसेक' (2006) प्रवासी भारतीयों की पहचान पर केंद्रित थी, और 'क्वीन ऑफ काटवे' (2016) युगांडा की एक लड़की की शतरंज की कहानी बताती है। मीरा की फिल्में हमेशा महिलाओं की स्वतंत्रता और सांस्कृतिक संघर्ष को केंद्र में रखती हैं। वह कहती हैं कि सिनेमा उनके लिए एक माध्यम है समाज को आईना दिखाने का, और उनकी यात्रा बताती है कि कैसे महिलाएं वैश्विक पटल पर अपनी आवाज बुलंद कर सकती हैं।

OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

एक और नाम है दीपा मेहता का, जिनकी 'फायर' (1996), 'अर्थ' (1998), और 'वाटर' (2005) ने भारतीय समाज के टैबू को चुनौती दी। 'फायर' में उन्होंने दो महिलाओं के बीच संबंध दिखाया, जो उस समय विवादास्पद था। 'अर्थ' विभाजन की त्रासदी पर थी, और 'वाटर' विधवाओं की स्थिति पर। दीपा की फिल्में कनाडा में बनीं, लेकिन भारतीय संदर्भ से जुड़ीं। 'वाटर' को ऑस्कर नामांकन मिला, और दीपा ने साबित किया कि महिलाएं सामाजिक मुद्दों पर गहराई से बात कर सकती हैं। उनकी कहानी चुनौतियों से भरी है। 'वाटर' की शूटिंग वाराणसी में रोक दी गई, लेकिन उन्होंने श्रीलंका में पूरी की। दीपा की रचनात्मकता बताती है कि निर्देशन सिर्फ कैमरा चलाना नही, बल्कि समाज को हिलाना है।

समकालीन भारतीय निर्देशकों की सूची में जोया अख्तर का नाम अत्यंत प्रमुख और प्रभावशाली है। उन्होंने वर्ष 2009 में फिल्म 'लक बाय चांस' से अपने निर्देशन करियर की शुरुआत की, जिसने बॉलीवुड की चकाचौंध के पीछे छिपी कड़वी सच्चाइयों को बेबाकी से पेश किया। उनकी सिनेमाई शैली आधुनिक भारत की नब्ज को पहचानती है। जहाँ 'जिंदगी ना मिलेगी दोबारा' (2011) दोस्ती, प्रेम और आत्म-खोज की एक बेहतरीन यात्रा है, वहीं 'गली बॉय' (2019) मुंबई की मलिन बस्तियों से निकले एक रैपर के संघर्ष की कहानी है, जिसे भारत की ओर से ऑस्कर के लिए भी भेजा गया था। जोया की फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता उनके महिला पात्र हैं, जो रूढ़ियों से मुक्त, स्वतंत्र और अपनी महत्वाकांक्षाओं के लिए सजग होती हैं। निर्देशन के अलावा, उन्होंने 'मेड इन हेवन' जैसी वेब सीरीज का निर्माण कर डिजिटल प्लेटफॉर्म पर भी अपनी रचनात्मक क्षमता सिद्ध की है। जोया अख्तर की यह यात्रा साबित करती है कि महिला फिल्मकार सामाजिक संदेश और व्यावसायिक सफलता, दोनों को एक साथ साधने में पूरी तरह सक्षम हैं।

मेघना गुलजार भारतीय सिनेमा का एक गंभीर और प्रभावशाली नाम हैं। महान गीतकार और निर्देशक गुलजार की बेटी होने के बावजूद, उन्होंने अपनी एक अलग और स्वतंत्र पहचान स्थापित की है। मेघना की फिल्में अक्सर सच्ची घटनाओं और यथार्थवाद पर आधारित होती हैं। उनकी फिल्म 'तलवार' (2015) ने आरुषि हत्याकांड की जटिलताओं को संवेदनशीलता से पेश किया, जबकि 'राजी' (2018) ने एक महिला जासूस के साहस और देशभक्ति को दिखाकर बॉक्स ऑफिस पर अपार सफलता हासिल की। वहीं, 'छपाक' (2020) एक एसिड अटैक सर्वाइवर के संघर्ष और जिजीविषा की मर्मस्पर्शी कहानी थी। मेघना के सिनेमा में महिलाएं केवल पात्र नहीं, बल्कि शक्ति का केंद्र होती हैं। उनका यह सफर आसान नहीं रहा, फिल्म स्कूल से लौटने के बाद उन्होंने छोटे प्रोजेक्ट्स से शुरुआत की और कड़े संघर्ष के बाद यह मुकाम पाया। मेघना गुलजार की यात्रा सिद्ध करती है कि एक सफल निर्देशक बनने के लिए केवल विरासत नहीं, बल्कि धैर्य, संवेदनशीलता और अटूट जज्बे की आवश्यकता होती है।

OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

अलंकृता श्रीवास्तव और गौरी शिंदे भारतीय सिनेमा में महिला कहानीकारों की दो अलग-अलग, लेकिन सशक्त धाराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। अलंकृता की पहचान उनके साहस और 'बोल्ड' विषयों के चुनाव के लिए है। उनकी फिल्म 'लिपस्टिक अंडर माय बुर्का' (2016) ने महिलाओं की यौनिकता और दमित इच्छाओं को उजागर करते हुए सेंसरशिप से एक लंबी लड़ाई लड़ी। वहीं, 'बॉम्बे बेगम्स' (2021) के जरिए उन्होंने आधुनिक महिलाओं की जटिलताओं और सामाजिक टैबू को चुनौती दी है। इसके ठीक विपरीत, गौरी शिंदे की शैली बेहद सहज और सरल है, जो सीधे दर्शकों के दिल को छूती है। उनकी 'इंग्लिश विंग्लिश' (2012) ने एक आम गृहिणी के आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान की पुनः प्राप्ति को बेहद खूबसूरती से दिखाया। वहीं, 'डियर जिंदगी' (2016) ने मानसिक स्वास्थ्य जैसे गंभीर मुद्दे को मुख्यधारा के सिनेमा में सहजता से पेश किया। ये दोनों निर्देशिकाएं अपने-अपने तरीके से महिलाओं की अनकही कहानियों को एक मजबूत आवाज़ दे रही हैं।

फिल्म निर्माण में लेखक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वही कोरे कागज़ पर फिल्म की आत्मा गढ़ते हैं। भारतीय सिनेमा के इतिहास में महिला लेखकों की संख्या भले ही सीमित रही हो, लेकिन उनका प्रभाव और योगदान अत्यंत विशाल रहा है। इस परंपरा की नीव 1930 के दशक में जद्दनबाई जैसी बहुमुखी प्रतिभाओं ने रखी, जिन्होंने उस दौर में गाने लिखकर और संगीत देकर महिलाओं के लिए नए रास्ते खोले। आधुनिक बॉलीवुड में पटकथा लेखन के क्षेत्र में हनी ईरानी का नाम एक स्तंभ की तरह है। उन्होंने अपनी सशक्त कलम से कई ऐसी क्लासिक फिल्मों को आकार दिया, जो हिंदी सिनेमा की धरोहर हैं। 1991 में आई यश चोपड़ा की फिल्म 'लम्हे' में हनी ईरानी ने कहानी और स्क्रीनप्ले लिखा। यह फिल्म अपनी संजीदा और अपारंपरिक प्रेम कहानी के लिए जानी जाती है, जिसमें श्रीदेवी की दोहरी भूमिका को उनकी लेखनी ने अविस्मरणीय बना दिया। इसके बाद, 1993 की कल्ट थ्रिलर 'डर' में उनका स्क्रीनप्ले देखने को मिला। उन्होंने शाहरुख खान के 'जुनूनी प्रेमी' के किरदार को इतनी गहरायी से लिखा कि वह किरदार हमेशा के लिए अमर हो गया। व्यावसायिक सिनेमा की नब्ज को भी उन्होंने बखूबी पहचाना। वर्ष 2000 की ब्लॉकबस्टर 'कहो ना... प्यार है' के लिए उन्हें बेस्ट स्क्रीनप्ले का फिल्मफेयर अवॉर्ड मिला। इस फिल्म में रितिक रोशन के डेब्यू और दोहरे किरदार को उन्होंने अपनी कसी हुई पटकथा से संभाला। उनकी रचनात्मकता का दायरा बहुत विस्तृत रहा। 2003 में 'कोई... मिल गया' के जरिए उन्होंने साइंस फिक्शन और मानवीय भावनाओं का अद्भुत मिश्रण पेश किया। हनी ईरानी का यह सफर प्रमाण है कि महिला लेखिकाओं ने अपनी कल्पनाशीलता से हिंदी सिनेमा को न केवल नई ऊँचाइयाँ दी हैं, बल्कि व्यावसायिक सफलता की नई परिभाषा भी गढ़ी है।

OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

जूही चतुर्वेदी हिंदी सिनेमा में पटकथा लेखन का एक ऐसा नाम हैं, जिन्होंने कहानियों को देखने का नजरिया बदल दिया है। उन्होंने 2012 में 'विकी डोनर' से अपनी शुरुआत की, जिसने स्पर्म डोनेशन जैसे वर्जित विषय को भी मुख्यधारा में सहजता और हास्य के साथ पेश किया। उनकी लेखनी का जादू 'पीकू' (2015) में पिता-पुत्री के रिश्तों की गहराई और 'अक्टूबर' (2018) में प्रेम की एक निस्वार्थ और अपारंपरिक परिभाषा के रूप में दिखाई देता है। जूही की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनका यथार्थवाद है; उनके पात्र और संवाद जिंदगी के बेहद करीब होते हैं और महिलाएं बहुआयामी नजर आती हैं। निर्देशक शूजित सरकार के साथ उनकी रचनात्मक साझेदारी ने 'मद्रास कैफे' (2013) और 'गुलाबो सिताबो' (2020) जैसी यादगार फिल्में दी हैं। 'गुलाबो सिताबो' के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ संवाद का फिल्मफेयर पुरस्कार भी मिला। जूही चतुर्वेदी ने साबित किया है कि एक अच्छी पटकथा ही फिल्म की असली रीढ़ होती है, जो पारंपरिक बॉलीवुड रोमांस से कहीं आगे है।

कनिका ढिल्लन ने शाहरुख़ खान की 'रा वन' (2011) लिखी। उनकी 'केदारनाथ' (2018) प्रेम और आपदा की कहानी, 'रश्मि रॉकेट' (2021) एथलीट की संघर्ष की कहानी थी। 'एक विलन रिटर्न्स' (2022), 'डंकी' (2023) अन्य महत्वपूर्ण फ़िल्में हैं। कनिका की स्क्रिप्ट्स महिलाओं की ताकत पर केंद्रित होती हैं। अलंकृता श्रीवास्तव लेखक भी हैं, उनकी स्क्रिप्ट्स बोल्ड टॉपिक्स छूती हैं। रीमा कागती ने 'जिंदगी ना मिलेगी दोबारा' लिखी, 'तलाश' (2012) निर्देशित की। रीमा की कहानियां जटिल होती हैं, और महिलाओं को सशक्त दिखाती हैं। गौरी शिंदे ने अपनी फिल्मों की स्क्रिप्ट्स खुद लिखी। उनकी कहानियां महिलाओं की आत्म खोज पर हैं। अन्विता दत्त ने 'बुलबुल' (2020) लिखी, जो महिला सशक्तिकरण की कथा है। अन्विता की स्क्रिप्ट्स काव्यात्मक होती हैं।

सिनेमा की दुनिया में संपादन वह अदृश्य कला है, जो बिखरे हुए कच्चे फुटेज को तराशकर एक प्रभावशाली फिल्म का रूप देती है। इस क्षेत्र में महिला संपादकों ने अपनी रचनात्मक दृष्टि से भारतीय सिनेमा को नई धार दी है। इनमें आरती बजाज का नाम सबसे प्रमुख है। उन्होंने 'जब वी मेट' (2007) और 'लव आज कल' जैसी रोमांटिक फिल्मों से लेकर 'गुलाल', 'देव डी' (2009), 'पान सिंह तोमर' (2012) और 'रॉकस्टार' (2011) जैसी जटिल फिल्मों को संपादित किया। 'हाईवे' (2014) और 'सलामे इश्क़' में भी उनकी कला दिखी। आरती की संपादन शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह दृश्यों के माध्यम से पात्रों की भावनाओं को बहुत तीव्रता से उभारती हैं। दूसरी ओर, दीपा भाटिया ने 'तारे जमीं पर' (2007) और 'माई नेम इज खान' (2010) जैसी फिल्मों के जरिए यह साबित किया कि संपादन फिल्म को भावनात्मक गहराई और ठहराव देता है। बॉलीवुड से परे क्षेत्रीय सिनेमा में भी महिलाओं का दबदबा है। संयुक्ता कजा ने मराठी सिनेमा में बेहतरीन काम किया है, जबकि बीना पॉल ने मलयालम सिनेमा को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वहीं, हेमा त्रिवेदी ने

OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

डॉक्यूमेंट्री संपादन की बारीकियों को साधा है। ये महिलाएं तकनीकी कक्ष में बैठकर फिल्म की अंतिम रूपरेखा तय करती हैं।

फिल्म निर्माण में सिनेमेटोग्राफी रीढ़ की हड्डी के समान है, जो निर्देशक की कल्पना को दृश्य रूप देती है। लंबे समय तक यह तकनीकी क्षेत्र पुरुषों के वर्चस्व वाला माना जाता था, क्योंकि इसमें भारी उपकरणों और कठिन आउटडोर शूटिंग की आवश्यकता होती थी। लेकिन, भारतीय महिला सिनेमेटोग्राफरों ने अपने हुनर से इस रूढ़ि को तोड़ते हुए एक नया इतिहास रचा है। वे अब केवल कैमरे के पीछे खड़ी नहीं हैं, बल्कि अपनी अनूठी दृष्टि से कहानियाँ बुन रही हैं। इस क्रांति का सूत्रपात बी.आर. विजयलक्ष्मी ने किया। 1986 में फिल्म 'अरुवड़ाई नाल' शूट करके वह न केवल भारत की, बल्कि एशिया की पहली महिला सिनेमेटोग्राफर बनीं। उनका यह साहसिक कदम आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मिसाल बना। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए फौजिया फातिमा ने 2002 में 'मित्र, माई फ्रेंड' के जरिए अपनी तकनीकी दक्षता सिद्ध की। महिला सिनेमेटोग्राफरों की यात्रा में एक स्वर्णिम अध्याय तब जुड़ा, जब अंजुली शुक्ला ने फिल्म 'कुट्टी' (2010) के लिए सर्वश्रेष्ठ सिनेमेटोग्राफी का 'राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार' जीता। यह सम्मान पाने वाली वह पहली महिला बनी। आधुनिक दौर में, सविता सिंह ने 'हवाईजादा' (2015) के भव्य और कलात्मक दृश्यों को कैद किया, वहीं प्रिया सेठ ने 'एयरलिफ्ट' (2016) जैसी बड़ी व्यावसायिक फिल्म को अपने यथार्थवादी कैमरे से जीवंत किया।

भारतीय सिनेमा में महिलाएं अब केवल अभिनय तक सीमित नहीं हैं, बल्कि बतौर निर्माता वे फिल्मों की कमान संभाल रही हैं और कहानियों को वित्तीय व रचनात्मक समर्थन दे रही हैं। इस क्षेत्र में गुनीत मोंगा ने इतिहास रचा है। उनकी निर्मित डॉक्यूमेंट्री 'द एलिफेंट व्हिस्परर्स' (2022) ने ऑस्कर जीतकर भारतीय प्रोडक्शन को वैश्विक मंच पर स्थापित किया। इंडस्ट्री की दिग्गज एकता कपूर ने 'द डर्टी पिक्चर' (2011) जैसी फिल्मों से यह साबित किया कि महिला-प्रधान फिल्में भी बॉक्स ऑफिस पर राज कर सकती हैं। वहीं, अभिनेत्रियों ने भी निर्माता बनकर जोखिम उठाया है। अनुष्का शर्मा ने 'एनएच10' (2015) जैसी डार्क थ्रिलर का निर्माण किया, तो प्रियंका चोपड़ा ने 'द स्काई इज़ पिंक' (2019) जैसी भावुक कहानी को पर्दे पर उतारा। इसी कड़ी में, किरण राव ने 'लापता लेडीज़' (2024) के जरिए ग्रामीण भारत की एक ताज़ा और मनोरंजक तस्वीर पेश की। ये महिलाएं फिल्मों का अर्थशास्त्र और कला, दोनों बखूबी संभाल रही हैं।

कॉस्ट्यूम डिजाइनरों की भूमिका सबसे अहम है, क्योंकि वे केवल कपड़े नहीं पहनाती, बल्कि वेशभूषा के जरिए किरदार की आत्मा और उसके कालखंड को परिभाषित करती हैं। इस क्षेत्र में भानु अथैया का नाम सबसे ऊपर है, जिन्होंने 1982 में फिल्म 'गांधी' के लिए ऑस्कर जीतकर इतिहास रचा और वैश्विक मंच पर भारतीय प्रतिभा का लोहा मनवाया। इसी विरासत को आगे बढ़ाते हुए, नीता लुल्ला ने फिल्म 'देवदास' (2002) में अपनी भव्य और राजसी डिजाइनों से दर्शकों को मंत्रमुग्ध

OPINION TODAY
National Bilingual (Hindi–English) Quarterly, Peer-Reviewed and Refereed Journal
Vol. 02, No. 01 (2026): January-March ISSN No. : 3108-2661

किया। समकालीन दौर में, एका लखानी ने 'संजू' (2018) में यथार्थवादी स्टाइलिंग के जरिए किरदार के सफर को दिखाया, तो शीतल इकबाल शर्मा ने 'गंगूबाई काठियावाड़ी' (2022) में 60 के दशक के मुंबई की शैली को खूबसूरती से पर्दे पर उतारा। सिर्फ वेशभूषा ही नहीं, अन्य तकनीकी क्षेत्रों में भी महिलाएं सिनेमा की 'अदृश्य शक्ति' बनकर उभरी हैं। शरन्या मेनन बतौर प्रोडक्शन डिजाइनर फिल्मों का माहौल तैयार करती हैं, प्रियंका एस. बतौर साउंड डिजाइनर ध्वनि की दुनिया रचती हैं, और सुनीता राडिया बतौर डीओपी (DOP) दृश्यों को कैमरे में कैद करती हैं। ये सभी मिलकर सिनेमा के ढांचे को मजबूती दे रही हैं। इनका बढ़ता प्रभाव समाज की सोच बदल रहा है और यह सुनिश्चित करता है कि भविष्य में और भी महिलाएं इन तकनीकी भूमिकाओं में नेतृत्व करेंगी।

भारतीय सिनेमा की यह एक सदी लंबी यात्रा इस बात की साक्षी है कि महिलाएं अब केवल सिल्वर स्क्रीन पर चमकने वाली 'ग्लैमरस नायिकाएं' नहीं हैं, बल्कि वे इस विशाल उद्योग की असली 'सूत्रधार' और 'शिल्पकार' बन चुकी हैं। फातिमा बेगम द्वारा 1926 में जलाई गई साहस की मशाल आज गुनीत मोंगा, जोया अख्तर और पायल कपाड़िया जैसे नामों के साथ एक देदीप्यमान प्रकाश पुंज बन गई है। इस लेख में हमने देखा कि कैसे निर्देशन से लेकर संपादन, और लेखन से लेकर छायांकन तक हर तकनीकी और रचनात्मक क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है। चाहे वह मेघना गुलजार का यथार्थवाद हो, हनी ईरानी और जूही चतुर्वेदी की कसी हुई पटकथाएँ हों, भानु अथैया की ऑस्कर विजेता डिजाइन हो, या फिर आरती बजाज की धारदार एडिटिंग इन सभी ने मिलकर यह मिथक तोड़ा है कि भारी कैमरे उठाना या प्रोडक्शन का गणित संभालना केवल पुरुषों का काम है।

इन महिलाओं और इन जैसी न जाने कितनी महिलाओं का योगदान केवल बॉक्स ऑफिस के आंकड़ों तक सीमित नहीं है, उन्होंने सिनेमा को 'मनोरंजन' से आगे ले जाकर 'सामाजिक बदलाव' का माध्यम बनाया है। उनकी कहानियों में स्त्रियां अब पीड़ित नहीं, बल्कि अपने भाग्य की रचयिता हैं। भारतीय सिनेमा के इतिहास की 'क्रेडिट लाइन्स' में भले ही इनका नाम स्क्रॉल करते हुए अंत में आए, लेकिन सिनेमा के अस्तित्व और उसकी आत्मा को गढ़ने में इनका स्थान सर्वोपरि है। यह एक मूक क्रांति है, जिसने भारतीय फिल्म जगत को वैश्विक मंच पर सम्मान और गहराई, दोनों प्रदान की है। भविष्य का सिनेमा अब इस 'अदृश्य शक्ति' के बिना अधूरा है।